श्री विजयधर्मसूरि जैन ग्रंथमाला पु. ३३.

मेरी मेवाड़यात्रा

लेखकः
मुनिराज श्री विद्याविजयजी

वीर सं. २४६२. धर्म सं. १४ वि. सं. १९९२

मूल्यः ०-३-०

: प्रकाशक :
दीपचंद बांठिया
मंत्री, श्री विजयधर्मसूरि जैन ग्रंथमाला
छोटा सराफा, उज्जैन।

प्रथम संस्करण
१०००

: मुद्रक :
धीरजलाल टोकरशी शाह
ज्योति मुद्रणालय, पाडापोल सामे,
गांधीरोड, अहमदाबाद.



स्व. श्री विजयधर्मसूरि महाराज.

विषय-सूची

*

दो बातें।

पुस्तक स्वयं 'प्रस्तावना' स्वरूप होने से, इसके लिये स्वतंत्र 'प्रस्तावना' की आवश्यकता नहीं है। तथापि ऐसे 'भ्रमणवृत्तान्तों' की आवश्यकता के विषय में 'दो बातें' लिखनी जरूरी हैं।

'भ्रमणवृत्तान्त' यह भी इतिहास का प्रधान अंग है। यही कारण है, कि प्राचीन समय में 'भारतभ्रमण' के लिये आनेवाले चीनी एवं अन्यान्यदेशीय मुसाफिरों की पुस्तकें आज भारतीय इतिवृत्त के लिये प्रमाणभुत मानी जाती हैं। किसी भी देश के तत्कालीन रश्म–रीवाजों, राजकीय एवं प्रजाकीय परिस्थिति, सामाजिक एवं धार्मिक रूढियाँ–इत्यादि कई बातों का पता ऐसे भ्रमणवृत्तान्तों से मिलता है।

ऐसे 'भ्रमणवृत्तान्त' न केवल गृहस्थ ही लिखते थे, जन–साधुओं में भी लिखने का रिवाज अधिक था। बहुधा वे, ऐसे वृत्तान्त पद्य में–रासाओं के तौर पर लिखते थे। जैन पुस्तक–भंडारों में ऐसे वृत्तान्त सैंकडों की संख्या में पाये जाते हैं। जैन साधुओं के लिखे हुए ये वृत्तान्त भारतवर्ष के इतिहास में अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। इसके दो कारण हैं:–

१– जैनसाधु की परिचर्या ही ऐसी है, जिससे किसी भी देश की सच्ची स्थिति का परिज्ञान उनको होता है। जैसे

छोटे बड़े सभी ग्रामों में पैदल विहार करना, गरीब और श्रीमंत सभी के घरो में भिक्षार्थ जाना, छोटे बड़े सभी लोगों के परिचय में आना, तथा राजा और प्रजा—सभी का कल्याण चाहते हुए धर्मोपदेश देना वगैरह।

२ जैनसाधु सर्वथा त्यागी होते हैं। उन्हें किसी चीज का लोभ या आकांक्षा नहीं रहती। वे स्वार्थरहित होने के कारण सच्ची सच्ची बात लिख और कह सकते हैं।

इन कारणों से जैनसाधु द्वारा लिखा हुआ 'वृत्तान्त' विशेष प्रामाणिक और आदरणीय माना जाता है।

किसी भी देश का इतिहास तद्देशवासी लोग इतना सत्य नहीं लिख सकते हैं जितना बाहर का दर्शक लिख सकता है। और उसमें खास कर के देशी रियासतों की प्रजा की स्थिति तो कुछ विचित्र ही होती है। इसी लिये भारतवर्ष की एक बड़ी रियासत के महाराजा अक्सर कहा करते थे, कि 'बाहर के लोग मेरे राज्य में आवें। खूब सूक्ष्मता से प्रत्येक बातों का निरीक्षण करें, और फिर वे अपना सच्चा अभिप्राय प्रगट करें। मुझे इससे बड़ी खुशी होगी। मैं अपने दोषों को समझ सकूंगा। अपने राज्य में रही हुई त्रुटियों को दूर कर सकूंगा।' कितने उत्तम विचार!

वस्तुतः सच्चा इतिहास वही है जो किसी तटस्थ लेखक द्वारा लिखा गया हो, और ढाल की दोनों बाजूओं

के देखकर के लिखा गया हो। चाहे वह इतिहास—वह वृत्तान्त किसी देश का, किसी समाज का, किसी राज्य का या धर्म का ही क्यों न हो। निदान एसे 'भ्रमणवृत्तान्तों' में तो दोनों तरफ का उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। 'भ्रमण' का मानी ही यह है कि जिसमें सुख—दुःख, आनंद—खेद, अनुकूलता — प्रतिकूलता दोनों का सामना हो। किसी देश के भ्रमण में जो जो बातें तकलीफों की हो, वे भी यदि न दिखाइं जायँ, और कोरा लाभ ही लाभ—आनंद ही आनंद, और 'सुख साधनों की श्रेष्ठता ही बतायी जाय, तो न वह 'भ्रमण वृत्तान्त' सच्चा कहा जा सकता है, और न प्रामाणिक माना जा सकता है। बल्कि वह तो एक प्रकार का धोखा है। साहित्य के पढ़नेवाले और समझदार महानुभाव तो इस बात के अच्छी तरह से समझ सकते हैं। परन्तु जिनका साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं, ये ऊपर ऊपर से पढ़ने से अथवा अन्य किसी के बरगलाने से एकदम भड़क जाते हैं। और बातें करने लग जाते हैं कि—देखो, इसमें कैसी बुराइ लिखी है, परन्तु वे बेचारे उस बात को न देख सकते हैं और न समझ सकते हैं कि त्रुटियों के साथ में उत्कृष्टता कितनी दिखलायी गयी है? और त्रुटियों का दिखलाना, किसी चीज के गुणों की उत्कृष्टता को कितना दृढ करनेवाला होता है? साहित्य को नहीं समझने वाले और अशिक्षित लोगों में कोई गलतफहमी हो जाय, यह तो क्षन्तव्य हो सकती है परन्तु

जब अच्छे पढ़े लिखे, और समझदार मनुष्य भी किसी कारण से अपने दिल में गलतफहमी को स्थान दे देते हैं, तब तो बड़ा ही आश्चर्य और दुःख होता है।

'मेवाड़' देश का विहार, वाकई में हम जैसे जैन साधुओं के लिये तकलीफों का स्थान जरूर है। ऐसी तकलीफों को उठानेवाले किसी प्राचीन मुसाफिर ने मेवाड़ के लिये कुछ वृत्तान्त कविता में लिखा है, जिस के कुछ नमूने मैंने दिये हैं। दूसरी तरफ से देखा जाय तो मेवाड़ **देवभूमि** है, मेवाड़ **तीर्थस्थान** है। मेवाड़ की **भक्ति**, मेवाड़ की **सरलता** और मेवाड़ में विचरने से होनेवाले **लाभ**–इनके आगे वे तकलीफें किसी हिसाब की नहीं हैं। और यही बात मैंने स्थान स्थान पर दिखलायी है। मेवाड़ भारतवर्ष का सब से **श्रेष्ठ, मनोहर** और इतिहास का **बेजोड स्थान** है, इसका भी उल्लेख मैंने कई जगह किया है। और इसी कारण से हमारे मुनिराजों को मेवाड़ में विचरने के लिये मैंने स्थान स्थान पर अपील की है, जोर दिया है और अनुरोध भी किया है।

उदयपुर में बीस वर्ष के पूर्व श्री **गुरुदेव** की सेवा में चतुर्मास किया था, तत्पश्चात् यह दूसरा चतुर्मास था। मैंने यह चतुर्मास, मेरे माननीय आत्मबंधु **शान्तमूर्ति, इतिहास तत्त्ववेत्ता मुनिराजश्री जयन्तविजयजी**, न्याय-साहित्यतीर्थ **मुनिश्री हिमांशुविजयजी** तथा गुरुभक्तिपरायण **मुनिश्री विशा-**

लविजयजी के साथ किया था। उदयपुर के श्रीसंघ ने हमलोगों की भक्ति करने में तथा जैनधर्म की प्रभावना करने में तन, मन और धन का जो व्यय किया है; वह प्रशंसनीय और अनुमोदनीय है। श्री संघ के उत्साह, उदारता और प्रयत्न का ही परिणाम था कि इस चतुर्मास में अनेकों पब्लिक व्याख्यान हुए, जिसमें रेसिडेंट से लेकर बड़े बड़े आफिसरों का तथा हिन्दू—मुसलमान सभी जनता का हजारों की संख्या में लाभ लेना हुआ था। श्री महाराणाजी सा० की दो दफ़ मुलाकात लेकर धर्मोपदेश सुनाया गया था। गुरुदेव श्री विजयधर्मसूरि महाराज का निर्वाणतिथि उत्सव अभूतपूर्व हुआ था, एवं **जैनश्वेताम्बर महासभा** की स्थापना भी हुई। इत्यादि अनेकों कार्य सुचारु रूपसे हुए थे।

उदयपुर के श्रीसंघ की भक्ति, उदारता और शासन प्रेम के विषय में भी मूललेख में बहुत कुछ लिख चुका हूँ। चतुर्मास के पश्चात् भी मेवाड़ के उत्तर-पश्चिम प्रदेश में दो-ढाई महिनों तक विचरने का और वहाँ की स्थिति का अभ्यास करते हुए, उस तरफ की प्रजा को धर्मोपदेश देने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी उदयपुर के श्री संघ की व्यवस्था और प्रयत्न का ही परिणाम था। इसमें खास कर के सेठ **रोशनलालजी सा. चतुर, श्रीमान् मोतीलालजी सा. बोहरा, श्रीयुत कारुलालजी सा. कोठारी, भाई मनोहरलालजी चतुर एम, ए. एलएल. बी., भाई हमीरलालजी मूरडिया बी. ए. एल एल. बी., श्रीयुत अम्बालालजी सा. दोसी, श्रीमान् भँवरलालजी** (मोतीलालजी सा. के पुत्र) **सिंगटवाडिया, श्रीयुत**

ख्यालिलालजी दलाल, श्रीमान् नथमलजी दलाल, भाई वीरचन्दजी सीरोया, श्रीयुत फतेहलालजी मनावत, श्रीयुत कालूलालजी मारवाडी, भाई गोकुलचन्दजी राजनगर वाले, भाई भँवरलालजी सिगटबाडिया इत्यादि महानुभावों की प्रेरणा और प्रयत्न विशेष सराहनीय थे, इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीमान् यतिवर्य अनूपचन्दजी ऋषिजी को भी मैं नहीं भूल सकता हूँ, जिन्होंने सारे चतुर्मास में हमारी हार्दिक भक्ति करने के अतिरिक्त मेवाड़ के विहार में भी कई दिनों तक हमारे साथ रह कर सहयोग दिया था।

'बम्बई समाचार' 'जैन ज्योति' और 'जैन' पत्र के अधिपतियों को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'मेरी मेवाड़यात्रा' की गुजराती लेखमाला अपने पत्रों में प्रकट कर गुजराती प्रजा को लाभ दिया।

अन्तमें—'मेरी मेवाड़यात्रा' के वाचनसे हमारे किसी भी मुनिराज को मेवाड़ में विचरने की और उस देश में पुनः सच्चे धर्म की जागृति पैदा करने की भावना उत्पन्न हो, एवं गुरुदेव मुझे भी फिर से मेवाड़ में विचरने की, एवं वहाँ के अधूरे कार्य को पूरा करने की शक्ति प्रदान करें, यही अन्तःकरण से चाहता हुआ यहाँ ही विराम लेता हूँ।

वरलूट (सीरोही स्टेट)
आषाढ सुदी १, २४६२ —विद्याविजय
धर्म सं० १४

मुनिराज श्री विद्याविजयजी के उपदेश से

एवं

श्रीयुत् जेसंगभाई कालीदास

तथा

शा. वलाखीदास लालचंद की प्रेरणा से

— अहमदावाद निवासी —

शेठ नेमचंद कचराभाई ने

इस संस्था के संरक्षक होकर के

शेठ पूंजाभाई हीराचंद

के स्मारक के लिये दी हुई सहायता में से

— यह तीसरा ग्रंथ —

प्रकाशित किया गया है।

प्रकाशक

उदयपुर के वर्त्तमान महाराणा



महाराजाधिराज महाराणाजी श्री १०८ श्री भूपालसिंहजी बहादुर,
जी. सी. एस. आई; के. सी. आई. ई.

मेरी मेवाड़ यात्रा

(१)

भारत वर्ष में मेवाड़ का बेजोड़ स्थान

मेवाड़ का नाम लेते ही, महाराणा प्रताप और स्वामिभक्त भामाशाह का नाम याद आ जाता है। मेवाड़ का नाम लेते ही, सुप्रसिद्ध तीर्थ 'केशरियाजी' याद आ जाते हैं। मेवाड़ के इतिहास के मानी हैं—भारतवर्ष की गौरवगाथा। पानी और पहाड़ों से सुशोभित मेवाड़ देश, भला किसे न प्रिय लगेगा? 'हुजूर' 'जो हुकुम' 'अन्नदाता' आदि अत्यन्त मधुर तथा नम्रभाषा भाषी मेवाड़, भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में अपना अद्वितीय स्थान रखता है। मेवाड़, यानी वीरों का समरांगण। मेवाड़, यानी प्राकृतिक दृश्यों का प्रदर्शन। मेवाड़ का खान-पान तथा वेश—भूषा, सब कुछ सादा। मेवाड़ के मनुष्य, यानी नम्रता की मूर्ति। तार तथा टेली-फोन—वायरलेस तथा बिजली के इस उन्नत कहे जानेवाले युग में भी, मेवाड़ के प्रत्येक स्थान में पत्रादि (Post) पहुँचाने वाली 'ब्राह्म-णिया डाक' आज तक मौजूद है। कोट, पतलून तथा नेकटाई

कॉलर के ज़माने में भी, पैर की एड़ी तक की अंगरखी और उस के उपर दस हाथ के दुपट्टे से कमर बांधे विना दरबार के महल में प्रवेश न पाने का रिवाज, आज भी मेवाड़ में सुरक्षित है। जिस ज़माने में, अन्य प्रान्तों के छोटे छोटे ग्रामों में भी चाय की होटलों का बोलबाला है, उसी ज़माने में मेवाड़ के प्रधान–नगर उदयपुर जैसे स्थान पर भी शायद ही कहीं चाय की होटल दिखाई दे। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में, फिज़ूल खर्ची के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है और ऐसा माना जा रहा है, कि इस फिज़ूल खर्ची से देशकी दरिद्रता में वृद्धि हो रही है। ऐसे समय में, मेवाड ही एक ऐसा देश दिखाई देता है, कि जहाँ मक्की तथा ज़ुआर की रोटियाँ और उर्द, चने या मूँग की दाल पर लोग निर्वाह करते हैं। अन्य प्रान्तों में एक साधारण कुटुम्ब के लिये मासिक कम से कम २५–३० रुपये कल्दार तो होने ही चाहिएँ, जब कि मेवाड़ का उसी श्रेणी का एक साधारण–कुटुम्ब, ७–८ कल्दार में अपना निर्वाह कर सकता है। इस तरह सादगी तथा नम्रता, विनय और भक्ति, प्राचीनता एवं पवित्रता, त्योंही सुन्दरता तथा स्नेहीपन, आदि प्रत्येक क्षेत्र में अपना ऊंचा स्थान रखने वाले मेवाड़ की यात्रा करने का मौका मिले, इसे भी सद्भाग्य की निशानी ही समजना चाहिये न! फिर भी, इस उच्च कोटि के देश के लिये किसी ने कहा है, कि—

"मेवाड़े पंच रत्नानि, काँटा भाटा च पर्वताः।
चतुर्थो राजदण्डः स्यात् पंचमं वस्त्रलूंटनम्"॥

काँटे, पत्थर, पर्वत, राजदण्ड और चोरों का उपद्रव इन पाँच से मेवाड़ को प्रसिद्ध माना है।

इसके अतिरिक्त, किसी दुःखी हृदयने, एक लम्बा कवित गाकर, मेवाड़ में प्रवेश करने का सब लोगों से निषेध किया है। उस लम्बे कवित के एक दो नमूने ये हैं:—

"मेवाड़े देशे भूलेचूके,
मत करियो परवेश।
नहिं आछो खाणो, वहु दुःख जाणो,
राणाजी रे देश।"
"जव मक्की रोटा, उड़दज खोटा,
खोटो खाय हमेश।
उजळ भगतारी, सौ नरनारी,
काळा पहिरे वेश।
मेवाडे देशे भूले—चूके,
मत करियो परवेश॥"

× × ×

"माथे पाघड़ियाँ, भेंसकी जडियाँ,
कर्म ने बाँधे ताण।
मन मांहे मोटा, घरमें टोटा,
झाडयाँ बांधे कान॥"
"भागे पहेलां से, फोजां फाटे,
शसतर बांधे विशेष।
मेवाडे देशे भूले—चूके
मत करियो परवेश॥"

× × ×

"नहिं चाले गाडाँ, रथ मतवालां,
घोडा कम्पे तेह ।
ज्याँ पोठी जावे, जब भर लावे,
मक्की खावे जेह ॥"
"षट्दर्शन बेठा, भूखा रेवे,
प्रभु—गुण गावे केम ?
मेवाडे देशे भूले—चूके,
मत करियो परवेश ॥"

ऐसे अनेक पद्यों में, इस अनुभवी हृदय ने मेवाड़ की कठिनाइयाँ गा गाकर बतलाई हैं, और वस्तुतः मेवाड़ के गहरे भागों में उतरनेवाला मनुष्य, इन कठिनाइयों का अनुभव किये विना नहीं रह सकता ।

ये पहाड और पत्थर, जंगल और अरण्य, नदी और नाले, चोर तथा डाकू, एवं जो एक सामान्य बात भी न समझ सकें, ऐसे निरक्षर अज्ञानी जीव—मनुष्य, मेवाड़ के किसी किसी भागों में आज भी दिख पडते हैं । यह सत्य है, कि पिछले कुछ वर्षों से चोरों तथा डाकुओं का उपद्रव बहुत कम हो गया है, शेष बहुत सी बातों में उपर्युक्त कथन की सत्यता किसी अंशमें आज भी स्पष्ट दिख पडती है । मेवाड का उपर्युक्त वर्णन करनेवाले कवि ने भी, उदयपुर को तो उससे मुक्त ही रक्खा है । अन्त में उसने कहा है, कि—

"इण विध देश मेवाड का,
यथायोग्य वरणाय ।
एक उदयपुर है भलो,
देखत आवै दाय ॥"

चाहे जो हो, मेवाड़, भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के बीच, बहुत सी बातों में अपना बेजोड़ स्थान रखता है, इस बात से तो कोई भी इनकार नहीं कर सकता। मेवाड़, काँटों तथा कंकरोंवाला, पहाड़ों तथा पत्थरोंवाला, नदी तथा नालोंवाला और सादा एवं शुष्क देश होते हुए भी, वस्तुतः 'देवभूमि'वाला देश है। वह अनेक तीर्थों तथा हजारों मन्दिरों से शोभायमान देश है, अनेक पूर्वाचार्यों की चरणरज से पवित्र हुआ देश है, धर्मवीर और क्षात्र वीर देश है, हिन्दूधर्मरक्षक देश है और आत्माभिमान में सना हुआ देश है, इस में तो किंचित् भी सन्देह नहीं है।

मेवाड़ में केशरियाजी, करेड़ा, देलवाड़ा, अदबदजी, दयालशाह का किला, चितोड़गढ़ आदि जैन तीर्थ मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त सारे मेवाड़ में लगभग तीन हजार मन्दिर विद्यमान हैं। मेवाडके इन मन्दिरों तथा तीर्थोंका निरीक्षण करनेसे विदित होता है, कि शीलसूरि, सोमसुन्दरसूरि, जयसुन्दरसूरि, सर्वानन्दसूरि, उदयरत्न, चारित्ररत्न, लक्ष्मीरत्न, जिनकुशलसूरि, जिनभद्रसूरि, जिनवर्धनसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसिंहसूरि, विजयदेवसूरि और शान्तिसूरि आदि अनेक पूर्वाचार्यों ने, इस प्रदेश को अपने पादविहार से पवित्र किया है।

इसी तरह वर्तमानयुग में भी अनेक आचार्योंने, इस मेवाड़ प्रदेश को अपने चरणकमल एवं उपदेशामृत से पवित्र किया है। जिनमें, स्वर्गस्थ गुरुदेव शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्म-

सूरिजी महाराज का स्थान मुख्य है। वीस वर्ष की लम्बी अवधि हो चुकी है, किन्तु आज भी उन गुरुदेव के उपकारों को उदयपुर की जनता स्मरण कर रही है।

उदयपुर का श्री संघ आज भी इस बात को मान रहा है, कि यदि स्वर्गस्थ गुरुदेवने सं० १९७२ का चातुर्मास उदयपुर में न किया होता, तो आज यहां श्रद्धालु–जैनों की जो संख्या दिखलाई पडती है, वह दिखाई देती या नहीं इसमें सन्देह है। जिस मेवाड़ में आज भी लगभग तीन हजार मन्दिर मौजूद हैं, उस मेवाड़ में इन मन्दिरों को माननेवालों की–इनको पूजनेवालों की संख्या पूर्वकाल में कितनी रही होगी, इसकी कल्पना सरलतापूर्वक की जा सकती है। कहा जाता है, कि मेवाड़ में एक समय पचासहजार श्वे० मूर्तिपूजक जैनों के घर थे। आज उसी मेवाड़ में (उदयपुर के लगभग २९०–३०० घरों सहित) मुश्किल से ५०० या ७०० घर मूर्तिपूजकों के रह गये हैं। इस दशाके आने का एक प्रधान कारण यह है कि–उस क्षेत्र में श्वे० मूर्तिपूजक साधुओं के विहार का अभाव। पिछले अनेक वर्षों से, साधुओं का विहार बन्द-सा रहा है। और दूसरी तरफ से, अन्यान्य सम्प्रदायों के उपदेशकों का सतत प्रयत्न जारी ही रहा। इसी के परिणामरूप यह दशा आ गई है। यद्यपि, यह बात सत्य है, कि–पिछले समय में भी वर्तमानकाल के अनेक आचार्यों तथा मुनिराजों ने मेवाड़ में प्रवेश किया है। किन्तु, उनका भ्रमणक्षेत्र केवल **उदयपुर** अथवा **केशरियाजी** के आगे

शायद ही कभी बढ पाया हो। किसी किसी मुनिराजने करेड़ा की तरफ थोड़ा विहार बढाया था, ऐसा सुना जाता है। किन्तु केवल एक ही बार के विहार या उपदेश से स्थायी असर नहीं हो सकती। और इसी कारण, थोड़े से सिंचन के पश्चात् लम्बी अवधि तक अभाव रहने पर फिर वही की वही शुष्कता आ जाती है।



मेवाड़-प्रवेश.

—:०:—

उपर एक कवि के शब्दों में कहा गया है, त्यों–

" मेवाडे देशे, भूले-चूके,

मत करियो परवेश !"

फिर भी, जहाँ 'क्षेत्र फरसना' बलवती होती है, वहाँ इस प्रकार के कथनों के आदेश की कोई किंचित् भी परवा नहीं करता, और यदि करने भी जाय, तो सिद्ध नहीं हो सकती। **पाटण** में चातुर्मास निश्चित हो जाने के बाद, किसी ने यह बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोची थी, कि ठीक बीस वर्ष पश्चात् मेवाड़ में प्रवेश होगा और उदयपुर में चातुर्मास होगा। भावी के उदर में क्या भरा है, इस बात की किसे खबर है। आबू की शीतलता में गरमी के दिन व्यतीत करते समय, अकस्मात ही उदयपुर के युवक दिखलाई पड़ते हैं। "नहीं हुजूर, पधारना ही पडेगा" "बचे बचाये हम लोगोंको बचाना हो, तो 'हाँ' कीजिये और फिर प्रस्थान कीजिये" " गुरुदेव द्वारा

बोए हुए बीजों से जो अंकुर निकले हैं, उन्हें यदि सिंचन करके बढाना हो, तो पधारिये और यदि सूखने देना हो तो जैसी आपकी इच्छा "।

उदयपुर के युवकों की इस विनति में, हृदय की वेदना थी। इस विनति में, गुरुभक्ति थी। यह विनति, कोई व्यवहारिक विनति न थी। इसमें, धर्म की सच्ची लगन थी। दया, दान, मूर्तिपूजा, आदि अनादिसिद्ध, शास्त्रसम्मत, सिद्धान्तवादी श्रद्धालु जैनों पर होनेवाले आक्रमण से बचाने की यह पुकार थी। युवकों की इस विनति से, किस कठोर हृदयवाले साधु का हृदय न पिगलता। किन्तु, हमारे लिये धर्मसंकट था। 'पाटन' का वचन पक्का था। भला वचन भंग का पातक कैसे उठाया जा सकता था?। और इधर इन युवकों की मर्मभेदी विनति का भी कैसे तिरस्कार किया जा सकता था?। इस तरह की उलझन में अभी कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे, कि इतने ही में उदयपुर का दूसरा डेप्युटेशन आ पहुँचा। उनकी आवश्यकता का इसी से अन्दाज लग गया। उनकी आवश्यकताओं का अनुमान करने के लिए, अब अधिक प्रमाणों की जरूरत न थी। अब तो ऐसा जान पड़ने लगा, कि पाटन की अपेक्षा भी शायद सेवा के लिये यह क्षेत्र अधिक उपयुक्त है। फिर भी, वचनबद्धता का प्रश्न सामने आता ही था। उदयपुर के गृहस्थ पाटन गये। संघ से विनति की और अपनी दुःख कथा कह सुनाई। परमदयालु, सच्चे शासनप्रेमी, वयोवृद्ध **प्रवर्तकजी श्री कान्तिविजयजी**

महाराज का हृदय द्रवीभूत हो उठा। उन्होंने, संघ से सिफारश की। संघने उदयपुर जाने की अनुमति दी। तार छूटे और हमने मेवाड़ के लिये प्रस्थान किया।

मारवाड से मेवाड़ में प्रवेश करने के चार मार्ग हैं। पींडवाडा होकर गोगूँदा जाने का, राणकपुर होते हुए भाणपुरा की नाल चढकर गोगूँदा जानेका, देसूरी या घाणेराव की नाल में होकर राजनगर जाने का और कोटड़ा की छावनी होते हुए, खेरवाडा होकर केशरियाजी जाने का मार्ग। पहले तीन रास्तों में केशरियाजी नहीं आते, किन्तु चौथे रास्ते की अपेक्षा मार्ग अच्छे हैं। छोटी छोटी घाटियाँ चढने की तकलीफ तो होती है, किन्तु एकन्दर में रास्ता अच्छा है। चौथे रास्ते से उदयपुर जाने में, रास्ते में केशरियाजी तो अवश्य आते हैं, किन्तु रास्ता लम्बा, महा भयङ्कर और अत्यन्त खतरनाक है। ऐसे ऐसे भीषण वन आते हैं, कि किस समय 'वाघजीभाई' या 'शेरसिंहजी' से समागम हो जाय, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यह कहने की आवश्यक्ता नहीं है कि–जंगल में मुजसे केवल चार–पाँच हाथ की दूरी पर ही, एक वाघजीभाई हमारी मण्डली के स्वागत के लिये विराजमान दिखाई दिये थे। किन्तु कौन जाने, पेट भरा हुआ था, या हमारा शरीर ही उन्हें पसन्द नहीं आया, चाहे जिस कारण से हो, हमें देखते ही वे पीठ दिखलाकर विदा हो गये। नदी–नालों का भी कोई पार नहीं है। १५–१५ और १७–१७ माइल तक कहीं उतरने का ठिकाना नहीं। सिरोही स्टेट और मेवाड़ की सीमा के स्थान पर

चोर डाकुओं का उपद्रव भी कुछ कम नहीं है। इस प्रकार के विकट मार्ग में, जिस समय पैरों में काँटे तथा कंकर चूभ रहे हो, तब मुख से अवश्यमेव यह बात निकल पडती है, कि–

"मेवाड़े देशे भूले-चूके,
मत करियो परवेश।

नहीं आछो खाणो, बहु दुःख-
जाणो, राणाजी रे देश॥"

फिर भी, मेवाड का महत्त्व समजनेवालों के लिये, इस प्रकार के कष्टों की कुछ कीमत नहीं है। जो देश साधुओं के विहार के अभाव में निराश हो चुका हो, जिस देश में अनेक प्रकार से सेवा के क्षेत्र मौजूद हो, जिस देश की जनता भद्रिक परिणामी और उपदेश ग्रहण करने को उत्सुक हो, जिस देश में संघ सोसायटी के झघडे न हों, जहाँ गच्छों की मारामारी न हो, ऐसे शान्त क्षेत्र में, शान्त वृत्ति से सेवा का कार्य करनेकी भावना किसे न होगी। हम उदयपुर पहुँचे और चातुर्मास वहीं किया।

—o—

(२)

उदयपुर

उदयपुर यानी मेवा की राजधानी-मेवाड का प्रधान नगर। उदयपुर राज्य, यानी राणाओं का राज्य। उदयपुर राज्य, आज भी अपने प्राचीन रीति-रिवाजों का पालन कर रहा है। पैरों में पायजामा और शरीर में अंगरखी, अंगरखी पर कोट और सिर पर पगड़ी, अथवा अंगरखी पर कमरबन्द और सिर पर पगड़ी। राज्य में, दफ्तरों में, महल में प्रवेश पाने की यह पोशाक, हज़ारों प्रकारके वेशों में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध किये बिना नहीं रहती।

उदयपुर में कोलतार की सडकें या सर्वत्र विशाल रास्ते न होते हुए भी, चारों तरफ पहाड़ ओर पानी से सुशोभित उदयपुर की रमणीयता, अन्य किसी भी शहर की अपेक्षा अपना सुन्दर स्वरूप अलग ही दिखलाती है। शहर की दक्षिण दिशा में, एक पहाड की

टेकरी पर, तालाव के किनारे बना हुआ प्राचीन राजमहल, दर्शकों के चित्त को आकर्षित करता है। इसके पास ही अंग्रेजी फैशन से बने हुए **शंभुनिवास** तथा **शिवनिवास** नामक महल और उनके नीचे ही अवस्थित विशाल तालाव, शहर की शोभा को बढ़ा रहे हैं। अनेक तालाव, अनेक बगीचे और अनेक महलों से सुशोभित उदयपुर, एक दर्शनीय शहर है, ऐसा अवश्यमेव कहा जा सकता है। उदयपुर की नगररचना की एक खूबी यह है, कि चाहे जहाँ खडे होकर चारों तरफ दृष्टि डालो, पहाड ही पहाड दिखलाइ पडेंगे। चाहे जहाँ खडे होकर देखने पर भी, ऐसा जान पडता है, मानों हम पहाड़ों के बीच में ही खडे हैं। यह नगर की बनावट की विशेपता है।

इसका एक खास कारण है। उदयपुर, महाराणा **उदयसिंह** का बसाया हुआ नगर है। पहिले, मेवाड़ की राजधानी **चितोडगढ़** में थी। वह गढ सुदृढ होते हुए भी, एक ऐसे लम्बे-से पहाड़ पर बना हुआ है, कि जो पहाड़ अन्य पर्वतों से बिलकुल अलग पड़ गया है। परिणामतः, शत्रुओं से युद्ध करने में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती थी। इस असुविधा को दूर करने के लिये, महाराणा **उदयसिंहजी** ने, उदयपुर बसाने के निमित्त, चारों तरफ पर्वतों से घिरे हुए इस स्थान को पसन्द किया था। उदयपुर की सुन्दरता में उसकी प्राकृतिक स्थिति अधिक कारणभूत है। चारों तरफ विशाल तालाव, पहाड़ और उन पहाड़ों पर की हरियाली, सचमुच ही चित्ताकर्षक है। उदयपुर राज्य में, पहाड़ों तथा सरोवरों की जैसी

सुन्दरता तथा विशालता दिख पड़ती है, वैसी भारतवर्ष के अन्य किसी राज्य में शायद ही दिखाई दे। जयसमुद्र, उदयसागर, पीछोला, फतेहसागर आदि तालाव, सचमुच ही समुद्र का दृश्य उपस्थित करते हैं।

राज्यकी विशेषता

यद्यपि, उदयपुर राज्य, गवालियर, मैसूर, और वड़ौदे के सदृश वड़ा राज्य नहीं है, फिर भी, इस राज्य में कुछ खास विशेषताएँ देखी जाती हैं। उदयपुर का राज्य, यद्यपि राणाओं का राज्य है, किन्तु राणाओं की अपने इष्टदेव एकलिंगजी पर रहनेवाली अनन्य श्रद्धा के कारण मेवाड़ के राजा तो '**एकलिंगजी**' कहे जाते हैं और राणाजी मेवाड़ राज्य के दीवान के नामसे प्रसिद्ध हैं।

उदयपुर की गद्दी पर वैठनेवाले राणाओं के सदृश धर्मश्रद्धा भी, शायद ही किसी दूसरे राजघराने में दिखाई दे।

उदयपुर राज्य, वर्तमान अंग्रेजी राज्य के आधीन होते हुए भी, अपनी वहुत सी स्वतन्त्रता अभी तक सुरक्षित रक्खे हुए है। वहाँ, अभीतक राज्य का अपना सिक्का चल रहा है और उस पर खुदे हुए 'दोस्ती लन्दन' शब्द, उसकी आंशिक–स्वतन्त्रता के सूचक हैं।

उदयपुर की गद्दी पर, यद्यपि अभी तक अनेक राणा हो चुके हैं, किन्तु इन सव में **महाराणा प्रताप** का नाम विशेषरूप से इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इसका कारण है

महाराणा प्रताप का स्वात्माभिमान! प्राणान्त तक भी पराधीनता नहीं स्वीकार करने और अपने धर्म पर दृढ़ रहने की उनकी टेक, आज भी उनकी अमरगाथाओं के रूपमें गाई जा रही हैं। उदयपुर का राज्य, यानी—हिन्दू धर्मरक्षक राज्य। उदयपुर का राज्य यानी धार्मिक श्रद्धावाला राज्य। उदयपुर की चली आती हुई धर्मश्रद्धा का अनुमान हमलोग इससे भी ल्गा सकते हैं कि—उदयपुर राज्य की आय का तृतीयांश मन्दिर आदि धार्मिक कार्यों में ही खर्च किया जाता है। हिन्दू या जैन का, सारे मेवाड़ में शायद ही ऐसा कोई मन्दिर होगा, कि जिसे राज्य की तरफसे थोड़ी बहुत सहायता न प्राप्त होती हो। कुछ मन्दिरों में, राज्य की तरफ से खासे आडम्बरों सहित खूब धूमधाम होती है, जिसके कारण वे मन्दिर महान् तीर्थस्थानों के रूप में पूजे जा रहे हैं।

राज्य के विभिन्न-विभाग, आज के अंग्रेजी फैशन के जमाने में भी, देवभाषा (संस्कृत) में निश्चित किये हुए नामों से प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ—उदयपुर की हाईकोर्ट का नाम है 'महद्राजसभा' (महद् राजसभा)। इसी तरह, अन्य, अनेक ऑफिसों के नाम भी प्राचीन पद्धति के ही हैं। उदयपुर राज्य, इस प्रकार की अनेक विशेपताओं के कारण विशिष्ट माना जाता है। उदयपुर राज्य की एक यह भी विशेपता है, कि जावर नामक स्थान में वहाँ चाँदी तथा सीसे की और पुर, गंगापुर तथा सहाड़ा में अभ्रक की खदानें मौजूद हैं। एक समय ऐसा था, जब चाँदी सीसेकी खदानों के कारण, जावरनगरी खूब आबाद थी।

जिस राज्य में धातुओं की ऐसी खदानें हों, उस राज्य की प्रजा कंगाल रहे, यह एक आश्चर्य की बात है।

उदयपुर राज्य की जो खास विशेषता है, वह है—उसके **राजवंश की प्राचीनता**। उदयपुर का राजवंश, वि० सं० ६२५ के लगभग से प्रारम्भ होकर, आजतक थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ बराबर राज्य करता चला आ रहा है। **लगभग चौदहसौ वर्ष तक एक ही प्रदेश पर राज्य करनेवाला, एक ही राजवंश, सारे संसार में शायद ही कोई दूसरा विद्यमान हो।** मुसलमानों और पठानों के समय में, अनेक राज्य नेस्तो नाबूद हो गये किन्तु राणाओं का राज्य ही ऐसा राज्य है, कि जो मुसलमानी धर्म की उत्पत्ति के पूर्व भी मौजूद था और आज भी विद्यमान है।

इसी तरह, उदयपुर के राजवंश का गौरव भी उसकी एक विशेषता है। यह बात पहले कही जा चुकी है, कि यद्यपि उदयपुर का राज्य बहुत बड़ा नहीं है, किन्तु उसके राजवंश का गौरव, भारतवर्षीय समस्त राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक बढ जाता है। उदयपुर का राज्य, सूर्यवंशी राज्य है। किन्तु समस्त सूर्यवंशियों में वे सर्वोपरि माने जाते हैं। भारतवर्ष के समस्त राजपूत राजा, उदयपुर के महाराणाओं को शिरोमणि मान कर उनके प्रति पूज्य भाव रखते आये हैं। ऐसा होने का खास कारण है इस—राज्य की स्वातन्त्र्यप्रियता और धर्मसम्बन्धी दृढता। उदयपुर राज्य का यह मुख्य सिद्धान्त है कि—

"जो दृढ राखे धर्म को, तेहि राखे करतार"